इकाई 19 भारत में दलीय प्रणाली की प्रकृति

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 दल प्रणाली की प्रकृति – स्वतंत्रता पश्चात् दो दशक

19.2.1 राजनीतिक केन्द्र से विकास

19.2.2 प्रमुख दल प्रणाली : मूल अभिलक्षण

19.2.3 कांग्रेस की केन्द्रिकता

19.3 परिवर्तित सामाजिक-आर्थिक रूपरेखा : राजनीतिक केन्द्र का विस्थापन

19.4 दल प्रणाली 1967 के बाद

19.5 कांग्रेस का केन्द्रिकता क्षय

19.6 समकालीन दल प्रणाली

19.6.1 केन्द्रीय स्तर पर दल प्रणाली

19.6.2 राज्य स्तर पर दल प्रणाली

19.7 सारांश

19.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

19.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

19.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप पाएँगे–भारत में दलीय प्रणाली की प्रकृति। इसका उद्देश्य है भारतीय राजनीतिशास्त्र के विद्यार्थी को स्वतंत्रतापूर्व काल में दलीय प्रणाली की उत्पत्ति में अन्तर्निहित मूल अभिलक्षणों से अवगत कराना। इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप –

- भारत में दलीय प्रणाली की प्रकृति को समझ सकेंगे और इसके विविध अभिलक्षणों को पहचान सकेंगे;
- दलीय प्रणाली के बदलते स्वभाव का विश्लेषण तथा उभरते प्रतिमानों की व्याख्या कर सकेंगे; और
- दलीय राजनीति के बदलते स्वभाव में अन्तर्निहित सामाजिक-आर्थिक तथा राजनीतिक कारकों पर चर्चा कर सकेंगे।

19.1 प्रस्तावना

भारत की दलीय प्रणाली अनोखी है। यह किसी भी प्रकार के उस वर्गीकरण में सही नहीं बैठती जिसका प्रयोग सामान्यत: दलीय प्रणालियों को वर्गीकृत करने में किया जाता है। एक ओर यह भारतीय राजनीति के विलक्षण स्वभाव द्वारा निरूपित होती है तो दूसरी ओर राज्य-समाज संबंध के स्वभाव द्वारा। गत दो दशकों में राजनीति के स्वभाव के साथ-साथ राज्य व् समाज के बीच संबंध के स्वभाव, दोनों में ठोस परिवर्तन हुआ है। परिवर्तन का एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण भेद पहले से कहीं अधिक संख्या में लोगों के राजनीति में उलझने या उसकी बात करने के प्रसंग में दिखाई

पड़ता है, खासकर वे लोग जो समाज के अल्पतर लाभांवित वर्गों से संबंध रखते हैं। वह दलीय प्रणाली के स्वभाव में परिवर्तन की भी व्याख्या करता है। वे विशिष्ट अभिलक्षण जिन्होंने स्वतंत्रता पश्चात् प्रथम दो दशकों में भारत में दलीय प्रणाली की पारिभाषित किया, आज देखने को नहीं मिलते।

वर्तमान दलीय प्रणाली को समझने के लिए, इसका इतिहास ढूँढना और परिवर्तनशील राज्य के संदर्भ में उसके राजनीतिक तर्क का हवाला देना आवश्यक है।

19.2 दल प्रणाली की प्रकृति–स्वतंत्रता पश्चात् दो दशक

19.2.1 राजनीतिक केन्द्र से विकास

रजनी कोठारी ने अपनी पुस्तक 'पॉलिटिक्स इन् इण्डिया' में तर्क प्रस्तुत किया है कि दलीय प्रणाली एक अभिन्य 'राजनीतिक केन्द्र' से उत्पन्न हुई। राष्ट्रवादी आन्दोलन के दौरान उत्कीर्ण इस राजनीतिक केन्द्र में थे – सामान्य सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि में भागीदार राजनीतिक अभिजात्य वर्ग, यथा शिक्षित, शहरी, खासकर मध्यम व उच्च वर्गों से सम्बन्ध रखने वाले ऊँची जाति के लोग।

अभिजात्य वर्ग की सामान्य सामाजिक पृष्ठभूमि समांगता में परिणत हुई जो राजनीतिक केन्द्र के साथ-साथ दलीय प्रणाली का भी एक पारिभाषिक अभिलक्षण बन गया। सत्तारूढ़ दल और विपक्ष, दोनों ने एक ही पृष्ठभूमि से आकर सामाजिक अवबोधनों को परस्पर बाँटा और अनेक मुद्दों पर पास-पास आए। एक सर्वसम्मति, इसी कारण आधारभूत मूल्यों के इर्द-गिर्द इस प्रणाली के अन्दर व्याप्त थी।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस उस राजनीतिक केन्द्र का संस्थागत प्रकटीकरण था। यह न सिर्फ राष्ट्रवादी आन्दोलन की एक महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति था बल्कि एक ऐसा गतिशील संगठन था जिसने राजनीतिक व्यवस्था के लिए देशज आधार तैयार किया। राजनीतिक महत्त्व के लगभग सभी राजनीतिक समूहों को समायोजित कर इसने राजनीतिक वार्ताओं और करारों के लिए एक बड़ा ही निर्णायक राजनीतिक स्थान प्रदान किया।

19.2.2 प्रमुख दल प्रणाली : मूल अभिलक्षण

1) स्वतंत्रता पश्चात् प्रथम दो दशकों के दौरान दलीय प्रणाली का एक-प्रभुत्वसम्पन्न दल प्रणाली के रूप में उल्लेख किया जाता था। यह एक बहुदलीय प्रणाली थी जहाँ सत्तारूढ़ दल एक दुर्दमनीय रूप से प्रभावी भूमिका अदा करता था। यद्यपि अनेक राज्य राजनीतिक दल अस्तित्व में थे और राजनीतिक रूप से व्यवहृत थे, फिर भी राजनीतिक के केन्द्रीय स्थान पर केवल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस काबिज़ थी। कांग्रेस का प्रभुत्व उसकी असीम संगठन-शक्ति के साथ-साथ संघीय संसद तथा राज्य विधानसभाओं, दोनों में विशाल संख्या में सीटें जीतने की उसकी क्षमता द्वारा निर्धारित हुआ।

2) सत्तासीन दल के रूप में कांग्रेस के प्रभुत्व का अर्थ प्रतिस्पर्धा का अभाव नहीं था। विपक्ष में बहुसंख्य दल प्रतिस्पर्धा प्रदान करते थे। फिर भी, ऐसी प्रतिस्पर्धा सत्तारूढ़ दल की प्रभावी स्थिति को असरकारी तरीके से चुनौती देने में परिणत नहीं हुई। मोरिस-जोन्स ने इस तथ्य की इन शब्दों में बड़ी उपयुक्त व्याख्या की है– "प्रभुत्व का सह-अस्तित्व प्रतिस्पर्धा के साथ परन्तु लेशमात्र भी प्रत्यावर्तन के साथ नहीं।" चुनावी संदर्भ में, इसका अभिप्राय था कि यद्यपि अनेक

विपक्षी दल चुनावी अखाड़े में कूदे परन्तु उनमें से कोई भी अकेले अथवा संयुक्त रूप से सीटों की पर्याप्त संख्या सुनिश्चित नहीं कर सका जिससे सत्तारूढ़ दल के रूप में कांग्रेस का स्थान लिया जा सके। ये दल वियोजित थे और संघ व राज्य विधानसभाओं में इनका प्रतिनिधित्व नगण्य था। कांग्रेस के प्रत्याशी बड़ी संख्या में प्रतिनिधि रूप में चुने जाते रहे, वास्तव में, यह संख्या उसके पक्ष में पड़े वोटों की बजाय आनुपातिक रूप से बड़ी थी।

3) सत्तासीन दल का कोई विकल्प उपलब्ध करने अथवा उसके प्रभुत्ववाली स्थिति को चुनौती भी दे पाने में अपनी अक्षमता के कारण, विपक्षी दलों ने प्रतिपक्ष की पारम्परिक भूमिका नहीं निभाई। इसके विपरीत, उनकी भूमिका लगातार दवाब डालने, और सत्तारूढ़ दल की आलोचना करने तक सीमित थी। विपक्षी दल, इसी कारण, दवाब दलों के रूप में व्यवहृत रहे।

4) कांग्रेस पार्टी के वे महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण जिन्होंने इसके प्रभुत्व वाली स्थिति को कायम रखने में मदद की, में एक था अपसारी सामाजिक समूहों और हितों के प्रतिनिधित्व की क्षमता। चूँकि उसे समाज के विभिन्न वर्गों से समर्थन प्राप्त था, उसने एक महाछतरी दल की भूमिका निभाई। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान उसने विभिन्न समूहों को अपने बाड़े में समायोजित किया था और एक ही संगठनात्मक ढाँचे के अन्तर्गत उनकी एकता की आवश्यकता पर बल दिया था। उसने इसी कारण एक बृहद् बहुदलीय स्वरूप ग्रहण कर लिया था। स्वतंत्रोत्तर काल में, उसने प्रभावी सामाजिक घटकों को जज़्ब करना और विभिन्न हितों में संतुलन कायम करना ज़ारी रखा। इससे उसको अपनी चुनौतीहीन सत्ता-स्थिति को बनाए रखने में मदद मिली। अपनी समंजनकारी और अनुकूल राजनीति के माध्यम से ही वह विपक्ष की भूमिका और उसके औचित्य पर नियंत्रण कर सकी।

5) विभिन्न हितों और विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते एक बहुवाचक दल होने के नाते, कांग्रेस में अनेक गुट थे। इनमें से कुछ अपेक्षाकृत अधिक प्रबल थे और पार्टी द्वारा निर्णय लिए जाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। अन्य थे असहमत गुट। कांग्रेस के इन गुटों में से अनेक तो कुछ विपक्षी दलों से सैद्धांतिक रूप से जुड़े थे। इसका कारण था कि विपक्ष में लगभग हर दल एक न एक बार कांग्रेस का हिस्सा रहा था और उसके एक बाहर स्वतंत्र दल गठित करते समय, उसके भीतर उसी प्रकार के सैद्धांतिक अनुस्थापन वाला गुट छोड़ चुका होता था। इसी कारण, कांग्रेस की राजनीति और विपक्षी दलों की राजनीति, दोनों के बीच हमेशा अविछिन्नता रही। इस अविछिन्नता ने विपक्षी दलों के लिए यह सम्भव कर दिया कि वे कांग्रेस पर दवाब डाल सकें और उसके निर्णयन् को प्रभावित कर सकें।

6) दल प्रणाली, इसीलिए, एक सहमतिजन्य आदर्श के आधार पर काम करती है। यह राजनीतिक मूल्यों के सभी सहभागी राजनीतिक कर्त्ताओं के इर्द-गिर्द बृहद् सहमति की एक राजनीति थी, चाहे वह सत्तारूढ़ समूहों के भीतर से व्यवहृत हो रही हो अथवा विपक्ष से। कांग्रेस के भीतर अथवा उसके बाहर सैद्धांतिक विभाजन अस्पष्ट थे।

19.2.3 कांग्रेस की केन्द्रिकता

कांग्रेस पार्टी के प्रभुत्व वाली अनोखी स्थिति के कारण, उसे भारतीय राजनीति के केन्द्रीय संस्थान के रूप में जाना जाता था। कांग्रेस की केन्द्रिकता विभिन्न स्तरों पर प्रकट हुई :

अ) एक स्तर पर, यह चुनावी राजनीति के सर्वाधिक केन्द्रीय स्थान पर काबिज़ हुई, इसी से उसका एकाधिकरण हुआ और केन्द्र व राज्यों में उसकी सत्ताधारी स्थिति को किसी भी अन्य दल द्वारा कड़ी चुनौती दिए जाने की गुंजाइश नहीं थी।

ब) एक अन्य स्तर पर, राज्य व समाज के बीच प्रधान स्थान पर उसके काबिज़ होने में उसकी केन्द्रिकता का खाका खींचा गया। समाज के विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करते हुए, यह राज्य की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण औपचारिक मध्यस्थ संस्था बनी रही। इसने, इसी कारण, राजनीतिक वार्तालापों और समझौतों के लिए सर्वाधिक निर्णायक स्थान प्रदान किया।

स) तीसरे स्तर पर, कांग्रेस की केन्द्रिकता उसके सैद्धान्तिक आधार पर प्रकट हुई। एक 'छतरी दल' होने के नाते उसके पास सभी प्रकार के सैद्धांतिक समूहों के लिए स्थान था। इस प्रकार, 'वाम' व 'दक्षिण' सैद्धांतिक दृष्टिकोण रखते हुए भी उसने एक 'मध्यमार्गी' विचारधारा का अनुकरण किया।

बोध प्रश्न 1

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) भारत की स्वतंत्रता के समय राजनीतिक आभिजात्य वर्ग की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि क्या थी?

.....

.....

.....

.....

.....

2) 'प्रभुत्व का सह-अस्तित्व प्रतिस्पर्धा के साथ परन्तु लेशमात्र भी प्रत्यावर्तन के साथ नहीं' से क्या तात्पर्य है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) 1976 से पूर्व विपक्षी दल खासतौर पर दवाब वाले दल क्यों कहे जाते थे?

.....

.....

.....

.....

.....

4) कांग्रेस पार्टी को एक छतरी दल (अम्ब्रैला पार्टी) क्यों कहा जाता था?

.....

.....

.....

.....

.....

5) 'कांग्रेस की केन्द्रिकता' से क्या तात्पर्य है?

.....

.....

.....

.....

.....

19.3 परिवर्तित सामाजिक-आर्थिक रूपरेखा : राजनीतिक केन्द्र का विस्थापन

साठ के बाद वाले दशकों में दल प्रणाली की प्रकृति में बदलाव, रजनी कोठारी के अनुसार, 'राज्य की परिवर्तित सामाजिक-आर्थिक व जनसांख्यिकीय रूपरेखा' का परिणाम था। राज्य की रूपरेखा में ऐसा परिवर्तन आम जनता की राजनीतिक लामबन्दी के साथ-साथ नए राजनीतिक वर्गों के उद्‌गमन का भी परिणाम था। आम जनता की राजनीतिक लामबंदी सार्वभौमिक व्यस्क मताधिकार के सिद्धांत पर आधारित चुनावी राजनीति का एक तर्कसंगत परिणाम था। जल्द ही होने वाले चुनावों ने भारत की आंम जनता की राजनीतिक अन्तर्विवेकशीलता को बढ़ाने में मदद की, खासकर पिछड़ी और निम्नतर जातियों से संबंध रखने वालों की।

भूमि-सुधारों के पृष्ठपट में नए राजनीतिक वर्गों का उद्‌गमन सीधे-सीधे ग्रामीण भारत में स्वाम्य कृषक वर्ग के उदय से जुड़ा था। सत्तर का दशक शुरू होते-होते, मुख्यत: पिछड़ी जातियों से सम्बद्ध भू-स्वामित्व वाले सामाजिक रूप से प्रबल वर्ग राजनीतिक सत्ता में एक हिस्से की माँग करने हेतु पर्याप्त आर्थिक शक्ति अर्जित कर चुके थे। प्रतिस्पर्धात्मक सत्ता राजनीति में इन जातियों का प्रवेश भारतीय राजनीति के लिए दूरगामी परिणामों वाला था। परम्परागत राजनीतिक संभ्रांत वर्ग के प्रभुत्व को, इसी कारण, कड़ी चुनौती थी। दूसरे, परस्पर विरोधी हितों के वैविध्य का भी बृहत्तर आविर्भाव था। ये नए प्रवेशक परम्परागत संभ्रांत वर्ग की राजनीतिक दु:खी अवस्था के भागीदार नहीं थे। उनकी न सिर्फ़ राजनीतिक व्यवस्था से भिन्न माँगें और भिन्न आशाएँ थीं बल्कि वे एक भिन्न राजनीतिक भाषा भी प्रयोग करते थे। इसका आमतौर पर परम्परागत राजनीतिक संभ्रांत वर्ग की, और विशेषत: कांग्रेस की सहमतिजन्य राजनीति के लिए एक गंभीर ख़तरा खड़ा करने वाला प्रभाव था। नानारूप हितों के एकीकरण और संतुलन में अक्षम कांग्रेस केन्द्रिकता की अपनी स्थिति से विस्थापित थी।

राजनीति का परिवर्तित प्रसंग निम्नतर जातियों के अभिकथन का भी परिणाम था। गिनती की राजनीति में निम्नतर जातियों और दलितों को राजनीति में लाया गया, प्रारंभिक रूप से संरक्षक-आश्रित

संबंध के संदर्भ में। इलाकाई तौर पर प्रबल जातियों के आश्रितों के रूप में, उनकी संख्यात्मक शक्ति का प्रयोग उनके संरक्षकों के हितों में किया गया। तथापि, भागीदारों के संवेग शक्ति के रूप में राजनीति उत्पन्न हुई, निम्नजाति राजनीति का स्वभाव भी बदल गया। निम्न जातियों और दलितों ने राजनीति में और अधिक स्वायत्त भूमिका अर्जित करनी शुरू कर दी और उनकी लामबन्दी उनके राजनीतिक हित से संबंधित हो गई। दलगत राजनीति के शब्दों में, इसने नई लामबंद जातियों के समर्थन व हित को प्रकट करते हुए दलों के निर्माण की ओर उन्मुख किया। ब.स.पा., समाजवादी पार्टी, और जनता दल ऐसे ही राजनीतिक निर्माणों के उदाहरण हैं। इन दलों ने दलितों और पिछड़ी जातियों के हित को स्पष्ट रूप से प्रकट किया।

बोध प्रश्न 2

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) भारत की राजनीति पर सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के सिद्धांत पर आधारित चुनावी राजनीति का क्या प्रभाव पड़ा?

.....

.....

.....

.....

.....

2) 1967 के लिए विभिन्न हितों को संघटित करने में कांग्रेस पार्टी इतनी सफल क्यों नहीं रही?

.....

.....

.....

.....

.....

3) कुछ ऐसे राजनीतिक दलों के उदाहरण दें जो जाति विशेष के हितार्थ तत्परता से लगे रहने के लिए गठित हुए थे।

.....

.....

.....

.....

.....

19.4 दल प्रणाली 1967 के बाद

1967 के बाद भारतीय राजतंत्र के साथ-साथ दलीय प्रणाली के स्वभाव में भी एक ठोस परिवर्तन आया। इस परिवर्तन की नानारूप शब्दों में व्याख्या की गई। कोठारी के अनुसार, ये प्रमुख दल प्रणाली के पतन की शुरुआत थी। जबकि मोरिस-जोन्स इसका श्रेय 'एक विपणन राजतंत्र' को देते हैं जिसमें अनेक विपक्षी दल 'पूरी तरह से विपणन स्थान पर लाए गए, और वह प्रतिस्पर्धा जो कांग्रेस के भीतर पहले हो चुकी थी अब अंतर्दलीय विवाद के क्षेत्र में लायी गई।' अनेक नई सियासी ताकतें और संगठन चुनावी राजनीति को और अधिक प्रतिस्पर्धात्मक बनाते हुए उभरने लगे। इन सब बातों ने धीरे-धीरे कांग्रेस को पतनोन्मुख कर दिया।

दलीय प्रणाली के स्वभाव में परिवर्तन, प्रारम्भिक रूप से, राज्य स्तर पर काफी अधिक दृश्यमान था जहाँ कांग्रेस पार्टी के आधिपत्य को अनेक ग़ैर-कांग्रेसी सरकारों के गठन द्वारा चुनौती थी। चौथे आम चुनाव ने गठबन्धनों की राजनीति के आरम्भ की ओर प्रवृत्त किया। इस चुनाव ने कांग्रेस पार्टी के विकृत बहुमतों को जन्म दिया। इस प्रकार, जनसंघ, एस.एस.पी., भा.क.पा., मा.क.पा. तथा सरकार में शामिल होने वाले अनेक क्षेत्रीय दलों के साथ अनेक राज्यों में गठबन्धन बनाए गए।

इसी बीच कांग्रेस ने केन्द्र-स्तर पर अपनी कमज़ोरियों के चिह्न दर्शाने शुरू कर दिए। कांग्रेस की कमज़ोरी के प्रारम्भिक संकेतकों में एक था – गुटबाज़ी का बदलता स्वरूप और पार्टी के भीतर असहमति का स्पष्ट होना। 1969 में तेज़ गुटबाज़ी ने अन्ततोगत्वा कांग्रेस के विभाजन की ओर उन्मुख किया। यह विभाजन यद्यपि पार्टी का अंदरूनी मामला था, इसके भारत की दलीय प्रणाली हेतु दूरगामी परिणाम निकले। इस विभाजन के मुख्य परिणामों में एक था – दलीय प्रणाली का और *भारतीय राजनीति के आम सहमति वाले आदर्श का पतन।* कांग्रेस की पुरानी संगठनात्मक संरचना जो अपेक्षाकृत अधिक लोकतांत्रिक थी और सामाजिक स्तरों पर एक बृहत्तर संबंध रखती थी, के स्थान पर एक अधिक केन्द्रीकृत संगठनात्मक समूह आ गया। यह नया समूह स्वभावत: पिरैमिडी था। इस संगठन के भीतर निर्णय लेने का काम व्यक्तिगत बना दिया गया और लोकतांत्रिक विसम्मति के लिए कोई स्थान नहीं छोड़ा गया। इन बातों का प्रभाव यह पड़ा कि कांग्रेस संगठनात्मक रूप से बहुत कमज़ोर हो गई।

भारतीय राजनीति के आम सहमति वाले आदर्श का पतन न सिर्फ़ कांग्रेस पार्टी की संगठनात्मक समस्याओं का, बल्कि राज्य-समाज के बदलते स्वभाव का भी आविर्भाव था। समजातीयता जो पहले संभ्रान्त वर्ग के स्वभाव द्वारा विदित थी, छठे दशक मध्य तक समाप्त हो गई। इसी समय नए वर्ग विशेष रूप से राजनीतिक सत्ता में हिस्से की माँग करते हुए अधिक सक्रिय होने शुरू हो गए। यह संभ्रान्त-वर्ग राजनीति के इस प्रकार बदले प्रसंग का ही प्रभाव था कि कांग्रेस अनेक राज्यों में अपने चुनावी प्रभुत्व को कायम रखने में असफल रही।

सत्तर के दशकांत तक आते-आते, इस दलीय प्रणाली में केन्द्र स्तर के साथ-साथ राज्यों के स्तर पर भी परिवर्तन-संकेत मिला। यह उस विखण्डन की वज़ह से हुआ जो राजनीतिक दलों में चल रहा था। यह एक ऐसी प्रक्रिया थी जिसको बस कुछ समय के लिए चलना था। फिर भी, परिवर्तन के बावजूद, प्रतिस्पर्धात्मकता दलीय राजनीति की एक मुख्य विशेषता थी। उन राजनीतिक दलों की संख्या जो चुनावी अखाड़े में कूदे, भी बढ़ी। इन सब बातों का अर्थ था कि एक-दल-प्रभुत्व का ज़माना पहले ही गुज़र चुका था। उसके स्थान पर एक बहुदलीय पद्धति का जन्म हुआ।

राजनीति के केन्द्रीय स्तर पर, राजनीति का नया प्रसंग कांग्रेस के विरुद्ध दलों के समेकन पर ज़ोर देने में प्रकट हुआ। कांग्रेस के विभाजन के साथ ही, कांग्रेस (पुरानी), एस.एस.पी., जनसंघ और

स्वतंत्रता के बीच 'भव्य गठजोड़' (ग्रैण्ड अलायन्स) बनाया गया। इस गठजोड़ के लिए तर्क था – ग़ैर-कांग्रेसी दलों की एकता, सत्ता की उसकी स्थिति को चुनौती देने के लिए लिहाज़ से। इस तर्क ने 1977 में जनता पार्टी के गठन की ओर उन्मुख किया। यह दल स्वयं ही पाँच पूर्ववर्ती दलों का घालमेल था – कांग्रेस (पु.), जनसंघ, सोशलिस्ट पार्टी, भारतीय लोकदल (भा.लो.द.), सी.एफ.डी। 1977 में कराए गए छठे आम चुनावों के बाद, यह नया दल पहली बार केन्द्र में सत्तारूढ़ कांग्रेस की निरंतरता को भंग करने में सफल हुआ। इसके प्रभावस्वरूप आगे दलीय प्रणाली के स्वभाव में ठोस परिवर्तन आए। कांग्रेस पार्टी की स्थिति और बिगड़ी तथा उसकी संगठनात्मक संरचना और कमज़ोर हो गई। अब यह विविध सामाजिक समूहों की एकीकृत करने में सक्षम नहीं रही। एक ओर, अन्तर्दलीय लोकतंत्र के अभाव और दूसरी ओर, सभ्य समाज के बदलते प्रसंग की तरफ उसकी संवेदनहीनता के कारण उसका संगठनात्मक ढाँचा तेज़ी से बिगड़ा। यद्यपि अब तक यह राजनीतिक सौदेबाज़ी की एकमात्र (और कम-से-कम एक और दशक के लिए सत्ता हासिल करने और केन्द्र में उसे कायम रखने में एकमात्र सक्षम) मुख्य संस्था रही थी फिर भी उसकी सत्ता वाली स्थिति बड़ी संदिग्ध थी।

बोध प्रश्न 3

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) 1967 के चुनावों का राज्य स्तर पर क्या परिणाम हुआ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत की दलीय राजनीति पर कांग्रेस में फूट का क्या प्रभाव पड़ा?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) 1977 के संसदीय चुनावों द्वारा लाया गया मुख्य परिवर्तन क्या था?

.....

.....

.....

.....

.....

19.5 कांग्रेस का केन्द्रिकता क्षय

1989 के संसदीय चुनावों के साथ शुरू हुए काल में ही कांग्रेस केन्द्रिकता की अपनी स्थिति से विस्थापित हो गई। केन्द्र की स्थिति से कांग्रेस के इस प्रकार के विस्थापन के विभिन्न निहितार्थ हैं:

1) प्रथमत:, कांग्रेस प्रमुख राजनीतिक पार्टी नहीं रही है। यह अब वो एकमात्र बड़ी राजनीतिक पार्टी नहीं रही है जो राजनीतिक परिदृश्य पर हावी रहा करती है। अनेक अन्य राजनीतिक संगठन भी अपना प्रभावशाली अस्तित्व रखते हैं। गत दो दशकों से, ग़ैर-कांग्रेसी राजनीतिक संगठनों की प्रभाविता रही है। प्रमुख ग़ैर-कांग्रेसी संगठन जो भारतीय राजनीति में निर्णायक भूमिका निभाते रहे हैं, में शामिल हैं – भारतीय जनता पार्टी (भा.ज.पा.), वामपंथी दल, और अनेक अन्य राष्ट्रीय व क्षेत्रीय दल। केन्द्रीय राजनीति में पहले कांग्रेस का प्रभुत्व था, अब अनेक राजनीतिक दलों द्वारा सत्ता का मिल-बाँटकर प्रयोग किया जा रहा है।

2) कांग्रेस के केन्द्रिकता लोप का एक अन्य परिप्रेक्ष्य में अर्थ है – सर्वसम्मति के प्रतिनिधित्व हेतु उसकी क्षमता का ह्रास। यह अब विविध हितों को समायोजित करने में सक्षम नहीं रही है। चूँकि राज्य-समाज संबंध का स्वभाव बदल चुका है और परिणामत: उभरते हित सुस्पष्ट किए जा चुके हैं, समाजगत विवाद और परस्पर विरोध अधिक सुनिश्चित हो गए हैं। ऐसे विवाद को शान्त करने के लिए आवश्यक केन्द्रीय स्थान कांग्रेस के पास उपलब्ध नहीं है। सह-विकल्प अथवा सौदेबाज़ी के पारम्परिक तरीके जो विवादास्पद हितों से व्यवहार में मदद करते थे, अब काम नहीं आते।

3) कांग्रेस के पतन ने किसी ऐसे वैकल्पिक राष्ट्रीय दल के उद्‌गमन की ओर उन्मुख नहीं किया जो केन्द्रीय स्थान ले सके। अन्य शब्दों में, एक-दल-प्रभुत्व प्रणाली का स्थानापन्न किसी दो-दलीय प्रणाली द्वारा नहीं किया गया है। अस्सी के दशकारम्भ में भा.ज.पा. के उदय ने कुछ विश्लेषकों को इस ओर आशान्वित किया है कि यह एक वैकल्पिक राष्ट्रीय दल के रूप में कार्य करेगा और कांग्रेस तथा भा.ज.पा. के बीच सत्ता की एक प्रत्यक्ष प्रतिस्पर्धा वाली एक द्वि-दलीय प्रणाली विकसित होगी। तथापि, यह सम्भव नहीं हो सकता था। जहाँ कांग्रेस लगातार अपनी मज़बूत स्थिति से पतित होती रही, भा.ज.पा. भी अपने बलबूते बहुमत हासिल नहीं कर सकी।

4) संसद में सीटों का बहुमत प्राप्त करने में कांग्रेस व भा.ज.पा. जैसे बड़े राष्ट्रीय दलों की असफलता भारतीय राजनीति के केन्द्रीय मंच पर बहुत-से छोटे दलों को ले आयी है। बड़े दल सरकार बनाने के लिए इन छोटे दलों पर निर्भर कर रहे हैं। एक-दल-बहुमत सरकारों की बजाय हम जनता दल का कोई-न-कोई अल्पमत गठबंधन पाते रहे हैं। 1991 में, कांग्रेस की अल्पमत सरकार सत्तारूढ़ हुई (जिसने बाद में बहुमत हासिल कर लिया)। 1996 के संसदीय

चुनावों ने कांग्रेस तथा वाम मोर्चा के समर्थन वाले, संयुक्त मोर्चा के तेरह दलों के एक अल्पमत गठजोड़ को जन्म दिया। 1998 में इस गठबंधन के स्थान पर भारतीय जनता पार्टी (भा.ज.पा.) के नेतृत्व वाला एक अन्य गठबंधन आ गया। 1999 के संसदीय चुनाव पुन: गठबंधन के सबसे बड़े सदस्य के रूप में भा.ज.पा. के साथ राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक गठबंधन (एन.डी.ए) की बहुदलीय सरकार में परिणत हुए।

बोध प्रश्न 4

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) 1989 के बाद से संसदीय चुनावों के चुनावी परिणाम के विषय में क्या विशेष है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) ऐसा क्यों कहा जाता है कि कांग्रेस की केन्द्रिकता 1989 के बाद से गिरी है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

19.6 समकालीन दल प्रणाली

19.6.1 केन्द्रीय स्तर पर दल प्रणाली

1) दलीय प्रणाली जैसी कि आजकल चल रही है, **राजनीतिक दलों के बाहुल्य** पर आधारित है। जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, 1989 से, राजनीतिक अखाड़े में आने वाले राजनीतिक दलों की संख्या में एक निश्चित वृद्धि हुई है। बहुत-से क्षेत्रीय और छोटे दलों ने कांग्रेस द्वारा पैदा किए गए निर्वात को भरा है। प्रमुख राष्ट्रीय दलों की शक्ति घट रही है और छोटे दलों की बढ़ रही है। 1989 के बाद का संयोजन बदले हुए दलीय परिदृश्य का ही प्रकटन है।

2) दलीय प्रणाली का स्वरूप जो आजकल उपलब्ध है प्राधान्यपूर्ण नहीं **बल्कि विकल्पन हेतु पर्याप्त सम्भावना के साथ प्रतिस्पर्धात्मक** है। तथापि, बहुमत हासिल करने में किसी भी एकल दल की अक्षमता के कारण, यह विकल्पन विशिष्ट दलों के बीच नहीं बल्कि राजनीतिक दलों के समूहों के बीच होता है।

3) चुनावीय गणित की बाध्यता और संघट्ट सरकारों की आवश्यकता **गठबंधन** की राजनीति में फलित हुई है। गठबंधन उन अनेक राजनीतिक दलों में हुआ करता है जो चुनाव लड़ने और सरकार बनाने के लिए एक साथ आते हैं।

4) गठबंधन की राजनीति को दलगत राजनीति के स्वभावार्थ अनेक परिणाम भुगतने पड़े हैं। सत्ता की राजनीति से सम्बन्ध रखते हुए पहले से कहीं अधिक संख्या में राजनीतिक पार्टियों के साथ **प्रतिस्पर्धात्मक राजनीति का स्थान विस्तीर्ण किया गया है**। बजाय इसके कि एक दल सत्ता पर आधिपत्य जमाए (जैसा कि राजनीति के 1967-पूर्व स्तर के मामले में था), अथवा दो या तीन दल भी अगर राजनीतिक सत्ता पर सच्चे दावे करें, अनेक राजनीतिक दल होते हैं जो राजनीति अखाड़े में आ जाते हैं। एक न एक संघट्ट ढाँचे के हिस्से के रूप में ये असंख्य राजनीतिक दल चुनाव प्रक्रिया और सरकार निर्माण में अनुपेक्षणीय दाँव लगाते हैं। गठबंधन की राजनीति, इसी कारण, सरकार की प्रकृति पर अपना प्रत्यक्ष प्रभाव रखती है। शासन संघट्ट भागीदारों के बीच एक **बृहत्तर सत्ता विसर्जन** पर आधारित होता है।

5) गठबंधन की प्रकृति प्रथम कारण के रूप में, साधारणतया सत्तात्मक राजनीति की अनिवार्यता के आधार पर थी। धीरे-धीरे, समय के साथ इस प्रसंग में एक अभिरचना ने जन्म लिया लगता है। बजाय इसके कि गठबंधन चुनावोपरांत बनते, अब चुनाव-पूर्व संघट्ट बनाने की प्रथा स्वीकृतप्राय है। पहले संघट्ट गठनहीन होते थे जिनमें एक सत्ता से संबंधित को छोड़कर शेष बिना किन्हीं साझा उद्देश्यों के एकजुट हुए सदस्य होते थे। परन्तु अब, संघट्ट के सभी साथियों को स्वीकार्य कोई **न्यूनतम साझा कार्यक्रम** बनाने हेतु किसी न किसी प्रकार का प्रयास किया जाता है।

6) गठबंधन साथियों के बीच साझा कार्यक्रम की स्वीकार्यता का अनिवार्यत: यह अर्थ नहीं है कि ये साथी साझा विचारधारा का अनुकरण करते हैं। वैचारिक संसजकता, वास्तव में, संघट्ट का स्वभावगत अभिलक्षण नहीं है। इन दलों की वैचारिक स्थिति, जो किसी संघट्ट में शामिल होने आगे आते हैं, कभी-कभी, नितान्त विरोधाभासी होती है। एक गठबंधन बनाने के लिए इन वैचारिक रूप से भिन्न दलों को जो प्रेरित करता है, वह है राजनीतिक सत्ता का तर्क। वरना, ये **ग़ैर-विचारधारा वाले राजनीतिक मोर्चे** ही हैं।

7) गठबंधन की राजनीति ने **दलों के ध्रुवीकरण** की ओर प्रवृत्त किया। आरंभिक वर्षों में, इस प्रकार के ध्रुवीकरण ने तीन संघट्ट ढाँचों का रूप ले लिया। 1989 के उपरांत राजनीतिक दल अपने आपको तीन ध्रुवों के इर्द-गिर्द संगठित करने लगे – एक कांग्रेस के नेतृत्व वाला, दूसरा भा.ज.पा. के नेतृत्व वाला और तीसरा वह जिसे तीसरा मोर्चा संयुक्त मोर्चा कहा गया। तीसरा ध्रुव बाद में कमज़ोर पड़ गया। जनता दल, तेलगु देशम्, वाम दल और अनेक अन्य क्षेत्रीय व प्रान्तीय दलों को शामिल कर, 1989 में यह सरकार बनाने में सफल रही परन्तु यह न तो अपनी एकता और न ही अपनी राजनीतिक शक्ति को ही लम्बे समय तक बरकरार रख सकी। यह शीघ्र ही विखण्डित हो गई और संसद में उसकी संख्या काफी घट गई। तीसरे मोर्चे का प्रतिनिधित्व करने वाले अनेक दल कांग्रेस अथवा भा.ज.पा. के इर्द-गिर्द पुनर्संमूहीकृत हो गए। गत कुछ संसदीय चुनावों में जिस तरह से गठबंधन बनाए गए हैं, उससे एक

द्वि-ध्रुवीयता उभरी है। कांग्रेस और भा.ज.पा. ही वे दो दल हैं जिनके इर्द-गिर्द नानारूप राजनीतिक दल हाल के चुनावों में समूहीकृत हुए हैं।

8) समकालीन **दल प्रणाली उस जटिलता और विषमता का प्रकटन है जो भारतीय समाज में व्याप्त है**। यह राजनीतिक हितों और मतों की विविधता का एक प्रतिरूप है। यह हरेक उस भागीदारीपूर्ण राजनीति को कहीं अधिक विस्तृत रूप से प्रकट करती है जिसने नानारूप समूहों का राजनीतिकरण और उनके राजनीतिक स्वर के सुस्पष्ट किया है। राजनीतिकरण का विस्तृत स्वभाव दलगत राजनीति की एक सुनम्य प्रकृति में फलित हुआ है। सत्ता की राजनीति पर अब बड़े और प्रमुख दलों का आधिपत्य नहीं रहा है। इसके विपरीत, **लघुतर दलों का यथेष्ट महत्त्व है**। बहुदल शासन में भागदारों के रूप में, इन छोटे दलों ने अपनी सौदाकारी शक्ति विकसित की है। यही कारण है कि ये दल न सिर्फ़ सत्ता का मिल-बाँट करते हैं बल्कि राजनीतिक निर्णयन में भी अभिव्यक्ति पाते हैं। उन नानारूप समूहों के प्रतिनिधियों के रूप में, जो सत्ता की राजनीति और अल्पसंख्यकों से अब तक निष्कासित हैं, ये लघुतर दल अपेक्षाकृत अधिक लोकतांत्रिक राजनीतिक स्थान स जन में मदद करते हैं।

9) इस परिप्रेक्ष्य से देखने पर, **दलीय प्रणाली का एक बृहत्तर संघीकृत प्रसंग है**। यह संघीकृत प्रसंग एक ओर राष्ट्रीय व क्षेत्रीय दल-प्रणाली के बीच पेचीदा संबंध द्वारा प्रदत्त है और दूसरी ओर, क्षेत्रीय दलों के दावे को इंगित करता है। गत दो दशकों में, क्षेत्रीय माँगों पर अपने फ़ोकस के साथ अनेक क्षेत्रीय दल उभरे हैं। ये क्षेत्रीय दल, राज्य स्तर पर महत्त्वपूर्ण राजनीतिक स्थान पर काबिज़ होने के अलावा केन्द्रीय राजनीति में भी निर्णायक भूमिका अदा कर रहे हैं। यह राजनीति के राष्ट्रीय स्तर पर उनकी सक्रिय उपस्थिति के कारण ही है कि यह दलीय प्रणाली वस्तुत: एक संघीय लक्षण ग्रहण करती जा रही है। चूँकि राष्ट्रीय दल सरकार बनाने के लिए क्षेत्रीय दलों पर निर्भर हैं, परिवर्ती अपनी सौदाकारी शक्ति बढ़ा चुके हैं। परिणामत:, **क्षेत्रीय दल मुख्यधारा में आए हैं**। क्षेत्रीय और राष्ट्रीय दलों के बीच पहले जो भेद हुआ करता था वह भी धुँधला पड़ गया है। राष्ट्रीय दल लक्षणत: क्षेत्रीय हो गए हैं और क्षेत्रीय दल उत्तरोत्तर रूप से राष्ट्रीय राजनीति में भाग ले रहे हैं और उसके द्वारा राष्ट्रीय महत्ता अर्जित करते जा रहे हैं। कांग्रेस और भा.ज.पा., दो राष्ट्रीय दल, अब एक लम्बे समय से, 'राष्ट्रीय' प्रभाव-क्षेत्र रखने की बजाय 'क्षेत्रीय' प्रभाव-क्षेत्र रखते हैं।

10) चूँकि 'राष्ट्रीय' दल क्षेत्रीय लक्षण ग्रहण कर रहे हैं, ये **क्षेत्रीय दल राष्ट्रीय कार्यसूची तैयार करने में महती भूमिका निभा रहे हैं**। ज़्यादा महत्त्वपूर्ण यह है कि क्षेत्रीय माँगें भारतीय राजनीति के राष्ट्रीय परिदृश्य में प्रबल रूप से मुखरित की जा रही हैं। पहले यह संभव नहीं था क्योंकि क्षेत्रीय माँगें राष्ट्रीय माँगों के विरोध में रखी जाती थी, और इसी कारण राष्ट्रीय एकता के लिए ख़तरा मानी जाती थीं। राजनीति के राष्ट्रीय स्तर पर क्षेत्रीय दलों के प्रवेश के साथ ही, ऐसी कोई बात नहीं रही। क्षेत्रीय और संघीय मुद्दे दलगत राजनीति के राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक कार्यसूची के महत्त्वपूर्ण भाग हैं। क्षेत्र अथवा क्षेत्रीय अभिकथन अब राष्ट्र के लिए ख़तरनाक नहीं माने जाते हैं।

11) भारत की संघीय संरचना के लिए यह महत्त्वपूर्ण निहितार्थ रखता है। एक-केन्द्रित प्रमुख-दल प्रणाली से राज्यों में पाए जाने वाले लघुतर दलों के लिए काफ़ी गुंजाइश वाली एक बहु-दलीय प्रणाली की ओर स्थानापन्न के साथ, केन्द्र-राज्य संबंधों में भी एक निश्चित स्थानापन्न हुआ है। यह उभरती दलीय प्रणाली राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और राज्य स्तरीय दलों के बीच साझेदारी का

एक अनिवार्य घटक रखती है। इसी कारण केन्द्र व राज्यों के बीच कहीं अधिक समतावादी संबंध हेतु आधार है। दलीय प्रणाली स्वयं ही राज्यों के हित का प्रतिनिधित्व करने के लिए संस्थागत व्यवस्था प्रदान कर रही है। दलीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहे अनेक क्षेत्रीय दल राज्यों के लिए और अधिक स्वायत्तता वाले केन्द्र-राज्य संबंध के पुनर्संगठन की माँग करते रहे हैं। उनके उत्कर्ष के साथ ही, क्षेत्रीय मुद्दों की ओर कहीं अधिक संवेदनशीलता विकसित हुई है और संघवाद पर अधिक मतैक्य उभरा है। यहाँ तक कि वे राष्ट्रीय दल जो पारम्परिक रूप से एक सशक्त केन्द्र के पक्षधर रहे थे संघवाद के तर्क को स्वीकार करने को बाध्य किए जा रहे थे। अकालियों, द्रविड़ मुनेत्र कड़गम, तेलुगु देशम पार्टी, तृणमूल काँग्रेस, समता पार्टी और नेशनल कान्फ्रेंस पर भा.ज.पा. की निर्भरता, उदाहरण के लिए, केन्द्र-राज्य संबंधों से ताल्लुक रखने वाले मुद्दों की ओर उसकी सुनम्य प्रवृत्ति में परिणत हुई है।

19.6.2 राज्य स्तर पर दल प्रणाली

दलीय प्रणाली का संघीय प्रसंग न सिर्फ़ राष्ट्रीय अथवा राज्य स्तर की दल-प्रणाली के बीच संबंध को अन्तर्निहित किए जाने की जटिलता पर, बल्कि राज्य स्तर पर दलीय प्रणाली की प्रवृत्ति का विश्लेषण करने पर भी ज़ोर देता है। यद्यपि राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर की दलगत में बहुत समानताएँ राजनीति फिर भी यह ग़ौर करना ज़रूरी है कि प्रत्येक राज्य की अपनी अलग विशेषताएँ हो सकती हैं।

कुछ समय से राज्य स्तर पर राजनीतिक सत्ता के लिए प्रखर प्रतिस्पर्धा रही है। फिर भी, इस प्रतिस्पर्धा की व्यवहार्य विधि में विभिन्नताएँ हैं। अनेक राज्यों में, कम से कम दो दलों के बीच सत्ता का विकल्पन है। इन राज्यों में, दलगत राजनीति का दो-दलीय राजनीति के रूप में वर्णन किया जा सकता है। अनेक अन्य राज्यों में, राजनीति दो दलों के बीच साफ़-साफ़ विभाजित नहीं है। स्वयं को दो समूहों/ ध्रुवों में समूहीवृत्त करने वाले दलों के साथ दलों का बाहुल्य है। इन राज्यों की दलगत राजनीति द्वि-ध्रुवीयता के शब्दों में परिभाषित की जा सकती है। ऐसे भी अन्य राज्य हैं जो बहु-दलीय प्रणाली तो रखते हैं परन्तु साफ़तौर पर दो-दलीय प्रणालियों अथवा द्वि-ध्रुवीयता वाली प्रणालियों के रूप में वर्गीकृत नहीं किए जा सकते हैं।

इसी कारण, राज्य स्तर पर दलगत राजनीति में काफ़ी तरलता है। यह तरलता न सिर्फ़ दलीय प्रतिस्पर्धा के स्वभाव में, बल्कि उस विधि में भी व्यवहृत है जिससे राज्यों में राजनीतिक दलों को आँका जाता है। क्षेत्रीय दल राज्यों के स्तर पर महत्त्वपूर्ण राजनीतिक कर्त्ता हैं परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि राष्ट्रीय दल राज्यों के स्तर पर व्यवहृत नहीं होते। क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय दलों के बीच प्रतिस्पर्धा के विभिन्न प्रतिरूप हैं। कुछ राज्यों में क्षेत्रीय दल बड़े ही निर्णायक राजनीतिक कर्त्ता हैं, जबकि अन्य राज्यों में क्षेत्रीय दल वैसी महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं निभाते। कुछ राज्य ऐसे हैं जहाँ राष्ट्रीय दलों का अस्तित्व महत्त्वपूर्ण नहीं है। कुछ राज्यों में, दलीय प्रतिस्पर्धा मुख्यत: राष्ट्रीय दलों के बीच होती है जबकि ऐसे राज्य भी हैं जहाँ सत्ता-हस्तांतरण किसी राष्ट्रीय तथा किसी क्षेत्रीय दल के बीच क्रमवार चलता रहता है। ऐसे कुछ राज्यों में, राष्ट्रीय दलों ने एक क्षेत्रीय लक्षण ग्रहण कर लिय है और वे राष्ट्रीय अथवा क्षेत्रीय दलों के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं। तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, असम, पंजाब, केरल तथा जम्मू-कश्मीर क्षेत्रीय दलों हेतु एक सशक्त परम्परा वाले राज्य हैं। जबकि उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मध्यप्रदेश, कर्नाटक, उड़ीसा तथा राजस्थान ऐसे राज्य रहे हैं जहाँ प्रतिस्पर्धा राष्ट्रीय दलों के बीच ही होती रही है। क्षेत्रीय दलों ने महाराष्ट्र तथा आंध्र प्रदेश में भी प्रबलता से धावा बोला है।

बोध प्रश्न 5

नोट :i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) दलीय राजनीति के शब्दों में द्वि-ध्रुवीयता से हम क्या अर्थ लगाते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) समकालीन दलीय राजनीति अधिक प्रतिनिधि और अधिक बहुवाचक क्यों है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) क्षेत्रीय दलों ने अधिक सौदाकारी शक्ति क्यों प्राप्त कर ली है?

.....

.....

.....

.....

.....

4) केन्द्र-राज्य संबंधों पर समकालीन दलीय प्रणाली का क्या प्रभाव पड़ा है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5) राज्य स्तर पर दलीय प्रणाली की क्या प्रकृति है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

19.7 सारांश

भारत में दलीय प्रणाली गत पाँच दशकों में बड़े परिवर्तनों से गुज़री है। राष्ट्रीय आन्दोलन की वसीयत के रूप में, 1947 में दलीय प्रणाली कांग्रेस पार्टी के छाये हुए प्रभुत्व द्वारा अभिलक्षित थी। भारत की केन्द्रीय राजनीतिक संस्था के रूप में कांग्रेस ने स्वतंत्रता पश्चात् प्रथम दो दशकों तक सत्ता की राजनीति पर पूरी तरह नियंत्रण रखा। कांग्रेस की शक्ति उसके संगठनात्मक ढाँचे और विविध राजनीतिक हितों को समायोजित करने में उसकी क्षमता में निहित है। कांग्रेस की विशिष्टता राजनीतिक संभ्रांत वर्ग के समजातीय स्वभाव के साथ जुड़ी थी, चाहे वह कांग्रेस से संबंध रखता हो या फिर विपक्ष से।

भारतीय राज्य की सामाजिक-आर्थिक रूपरेखा के स्वभाव में परिवर्तन के साथ 1967 के पश्चात् दलीय प्रणाली वास्तविक रूप से बदली। आम जनता के राजनीतिकरण के साथ-साथ नए सामाजिक-आर्थिक समूहों, मुख्यत: मध्यम कृषिवर्ग, पिछड़ी जातियों और दलितों, के अभिकथन के साथ दलीय प्रणाली भी बदली। परस्पर विरोधी हितों को समायोजित करने में कांग्रेस की अक्षमता और उसके संगठनात्मक ढाँचे के क्षय ने उसको पतनोन्मुख कर दिया। अस्सी के दशकांत तक कांग्रेस अपनी केन्द्रिकता खो चुकी थी। 'कांग्रेस प्रणाली' के स्थान पर एक बहुदलीय प्रणाली आ गई।

समकालीन दलीय प्रणाली को उसके बहुत्व द्वारा परिभाषित किया जाता है। कांग्रेस के उसकी केन्द्रिक स्थिति से पीछे हट जाने से पैदा हुए निर्वात को अनेक राष्ट्रीय व क्षेत्रीय दलों ने भरा है। क्षेत्रीय दल पहले से अधिक हठधर्मी हो गए हैं क्योंकि वे राष्ट्रीय राजनीति में राष्ट्रीय दलों के साथियों के रूप में शामिल हुए हैं। इसने भारत की संघीय संरचना को भी मज़बूत किया है।

19.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

कोठारी, रजनी, *पॉलिटिक्स इन् इण्डिया,* ओरियेण्ट लॉन्गमैन, दिल्ली, 1970।

—— "दि कांग्रेस सिस्टम'' इन् इण्डिया', *पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन्स स्टडीज़* में, ऑकेज़नल पेपर्स ऑव द सैंटर फॉर डिवेलपिंग सॅसाइटीज़, नं. 1, एलाइड पब्लिशर्ज़, बम्बई, 1967।

मोरिस्-जोन्स, 'डोमिनैन्स एण्ड डिसैंट : देअर इण्टर-रिलेशन इन् दि इण्डियन पार्टी सिस्टम, मोरिस-जोन्स कृत *पॉलिटिक्स मेनली इण्डियन* में, ओरियेण्ट लॉन्गमैन, मद्रास, 1978।

मैनर, जैम्स, 'पार्टीज़ एण्ड दि पार्टी सिस्टम', अतुल कोहली *कृत इण्डिया'ज़ डिमोक्रेसी : एन् एनालिसिस ऑव चेन्जिंग स्टेट-सॅसाइटी रिलेशन्स,* ओरियेण्ट लॉन्गमैन, दिल्ली, 1988।

पई सुधा, 'दि इण्डियन पार्टी सिस्टम अण्डर ट्रान्सफोर्मेशन : लोक सभा इलैक्शन्स 1998'। *एशियन सर्वे,* खण्ड-XXXVIII, नं. 9, सितम्बर 1998।

19.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) उनकी समान सामाजिक-आर्थिक प्रष्ठभूमि-शिक्षित, शहरी, मध्य और उच्च वर्ग से संबंधित।

2) कांग्रेस का अनेक दलों के साथ प्रभावशाली गुट के रूप में अस्तित्व।

3) वे कांग्रेस का विकल्प देने में असफल थे। वास्तव में वे दलों की तुलना में दबाव गुट ज्यादा थे।

4) इसको समाज के विभिन्न वर्गों का समर्थन प्राप्त था।

5) भारतीय दल व्यवस्था में इसका मुख्य स्थान था।

बोध प्रश्न 2

1) लोगों की राजनीतिक लामबंदी।

2) नए गुटों ने अपने-अपने दलों की स्थापना की।

3) जनता दल, समाजवादी पार्टी और बी एस पी।

बोध प्रश्न 3

1) कांग्रेस का पतन और प्रतियोगात्मक राजनीति का उदय।

2) राजनीति के सहमति पर आधारित मॉडल का पतन।

3) गैर कांग्रेसी दलों को एकता प्रदान की और कांग्रेस के संगठन का ह्रास हुआ।

बोध प्रश्न 4

1) दलीय संगठनों का दो मुख्य दलों - भाजपा और कांग्रेस में ध्रुवीकरण।

2) यह समाज में विषमताओं को दर्शाता है।

3) राष्ट्रीय राजनीति में सक्रिय उपस्थिति के कारण।

4) क्षेत्रीय तथा संघीय विषय राजनीतिक एजेन्डा के एक आवश्यक अंग बन गए।